प्रवचन-५९, श्लोक-७५, गाथा-५१-५५, शनिवार, श्रावण शुक्ल १२, दिनांक ०६-०९-१९८०

नियमसार, फिर से अन्तिम पेराग्राफ लेते हैं। आत्मा को मुक्ति-मोक्ष कैसे हो? मोक्ष कैसे हो, यह बात चलती है। सूक्ष्म बात है, भगवान! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय-परिणतिवाले...** कहो, यह घर में कभी पढ़ा है? ब्याज से पैसा घुमावे। पुस्तक तो है न?

मुमुक्षु : पढ़ा परन्तु समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पढ़ा नहीं। पहले पढ़े, फिर समझे, न समझे-वह बाद की बात। आहाहा! पाँच-सात करोड़ रुपये और पैसे। अब उस धूल में... पाँच-छह करोड़ रुपये। धूल-धूल। ऐसे सब कितने ही देखे हैं। यहाँ तो कहते हैं कि मुक्ति किसकी होती है? भाई को बताओ।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले... क्या कहते हैं? आत्मा अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वरूपी जो अभेदवस्तु है, वह अभेद अर्थात् एकरूप वस्तु है। वह अनुपचार है। व्यवहार नहीं, निश्चय। अभेद अर्थात् कि भेद नहीं और अनुपचार अर्थात् निश्चय। आहाहा! आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय स्वरूप प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड, उसका **अभेद-अनुपचार...** अर्थात् निश्चय। **रत्नत्रयपरिणतिवाले...** जिसे सच्चा निश्चयरत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र प्रगट हुए हैं, उस जीव को। भाषा ऐसी है। भगवान की सैद्धान्तिक भाषा संक्षिप्त है। आहाहा!

अभेद चैतन्यस्वरूप में राग-द्वेष, पुण्य-पाप तो नहीं परन्तु उसमें गुण-गुणी भेद भी नहीं। आहाहा! गुणी आत्मा और आनन्द, ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुण, यह भेद भी दृष्टि में नहीं लेना। दृष्टि में अभेद एकरूप लेना। अनुपचार अर्थात् निश्चय। उपचार नहीं अर्थात् निश्चय। आहाहा! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह रत्नत्रय। तीन रत्न। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। निश्चय तीन रत्न। आहाहा! वह **रत्नत्रयपरिणतिवाले...** उसकी परिणति अर्थात् पर्याय। यह रत्नत्रय है, वह पर्याय है,

उसका विषय है, वह अभेद अनुपचार है। त्रिकाली वस्तु भगवान आत्मा अखण्ड अभेद अनन्त गुण का पिण्ड, वह अभेद अनुपचार अर्थात् निश्चय, ऐसी रत्नत्रयपरिणति, जो स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र उत्पन्न हुए, जो निर्विकल्प आनन्दसहित रत्नत्रय उत्पन्न होता है, उस रत्नत्रय परिणतिवाले जीव को मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है... आहाहा! जो भगवान आत्मा टंकोत्कीर्ण शाश्वत। शाश्वत एकरूप जिसका स्वभाव है। अनन्त गुण हैं, परन्तु उसका स्वरूप एकरूप स्वभाव है। द्रव्यरूप से, तत्त्वरूप से एकरूप स्वभाव है। जैसे शक्कर में गलपण और मिठास आदि है, तथापि शक्कररूप से एक है। इसी प्रकार आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं परन्तु वस्तुरूप से एक है। आहाहा! ऐसा उपदेश! उस **रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत्। एक ज्ञायक। जानन.. जानन.. जानन.. जाननेवाला.. जाननेवाला.. ज्ञायक जिसका भगवान आत्मा का स्वभाव। आहाहा!

ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है... जानन एक ही स्वभाव है। अनन्त गुण हैं परन्तु सबमें एकरूप ज्ञायक एक स्वभाव है। आहाहा! है? **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका...** अर्थात् आत्मा का। **एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** ऐसा प्रभु आत्मा, निज—अपनी, परमतत्त्व की श्रद्धा। वह परमतत्त्व ज्ञायकस्वरूप, अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का सागर, परन्तु एकरूप वस्तु, उस तत्त्व की श्रद्धा द्वारा। **ऐसे निज परमतत्त्व...** ऐसा जो ज्ञायक, उसकी **श्रद्धा द्वारा,...** तीन कहेंगे। श्रद्धा द्वारा, ज्ञान द्वारा, चारित्र द्वारा तीनों एक होकर मुक्ति होगी, तब सिद्धपद होगा। आहाहा!

तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)... स्वरूप ज्ञायक भगवान-जानन-देखन चैतन्यसूर्य, चैतन्यचन्द्र, चैतन्य प्रकाश का पूर, उसका ज्ञान। उसका ज्ञान... आहाहा! भाषा भी कठिन। प्रभु का मार्ग, जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! **(उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)...** परमतत्त्व जो भगवान आत्मा, उसका ज्ञान। शास्त्रज्ञान और दूसरे ज्ञान यहाँ काम नहीं करते। आहाहा! मोक्ष के उपाय में तो एक चैतन्य ज्ञायकभाव का ज्ञान। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है जरा। सुजानमलजी! जिसके अभी कान में

पड़ा न हो कि यह चीज़ क्या है ? अरे रे ! उसे कब समझना और कब करना ? अनन्त काल से भटकता है। उसे इस द्वारा ही मुक्ति होगी; दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इसलिए श्रद्धामात्र और उस परमतत्त्व की **तद्ज्ञानमात्र...** तद्ज्ञानमात्र अर्थात् अकेला चैतन्यमूर्ति का ही ज्ञान। दूसरा कुछ नहीं। तद्ज्ञानमात्र—अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप, तदज्ञानमात्र - उसका ज्ञान। यह दूसरा बोल हुआ। पहले समकित - श्रद्धा कहा, यह ज्ञान कहा और उस **(निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से...** वह परमतत्त्व भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का गंज प्रभु ! ज्ञान और आनन्द का महापर्वत अरूपी प्रभु अन्दर है। आहाहा ! उसमें **अविचलरूप से स्थित...** चलित न हो, उस प्रकार से स्थित, वह चारित्र है। चारित्र कहीं पंच महाव्रत और दया, दान, व्रत, भक्ति, वह कोई चारित्र नहीं है। वे तो सब राग और विकल्प का जाल है। आहाहा ! क्या कहा ?

अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा... स्वाभाविक चारित्र द्वारा। स्वाभाविक चारित्र अर्थात् अन्दर आनन्दस्वरूप, ज्ञान, आनन्दस्वरूप की श्रद्धा, त्रिकाली आनन्दस्वरूप में रमणता। आहाहा ! ऐसा महँगा, बापू ! लोगों को पहुँचना (कठिन लगता है)। उसका ज्ञान, उसका अविचल चारित्र मात्र **सहजचारित्र द्वारा...** है ? स्वाभाविक चारित्र द्वारा। **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** पहले कभी नहीं हुई। सिद्धपद कभी नहीं हुआ। इसके द्वारा, सिद्धपद पूर्व में नहीं हुआ ऐसा (पद) प्राप्त होता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एकरूप ज्ञायक, शुद्ध चैतन्यज्योत, उस एक की श्रद्धा-समकित और उसका ज्ञान और उसमें अविचलरूप से-चलित न हो, ऐसी स्थिरता, इन तीन से अभूतपूर्व—पूर्व में कभी सिद्धि हुई नहीं (ऐसी)—इन तीन से सिद्धि होती है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, प्रभु ! भाव तो जो हो, वह है। क्या हो ? तीन लोक के नाथ की बात है। सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा की वाणी में यह आया है। वह वाणी सन्तों ने स्वयं.. शास्त्र की रचना की है।

कहते हैं कि अभूतपूर्व सिद्धपर्याय। सिद्ध भगवान जो आत्मा अभूत—पूर्व में कभी दशा हुई नहीं। अनन्त काल में अनन्त भव नरक और निगोद के किये। चींटी, कौआ, कुत्ता, सूकर और... आहाहा ! ऐसे अनन्त-अनन्त भव में कभी एक समय भी सिद्धपद प्राप्त नहीं हुआ। आहाहा ! इन सबका नाश करके अपने आनन्दस्वरूप भगवान की श्रद्धा, ज्ञान और

अविचल चारित्र द्वारा अभूतपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं हुई, ऐसी सिद्धि अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है। आहाहा! अरे रे! ऐसा सूक्ष्म।

इसमें रुपया-वुपैया क्या काम करते होंगे? ....भाई! यह सब पैसेवाले करोड़पति हैं। धूल-धूलपति। उसी-उसी में रुकते हैं। अरे! आज अभी मलूपचन्दभाई का सुना न! चन्दुभाई के बड़े बापू। आहाहा! उम्र कितनी थी? ८० वर्ष। दुर्बल / डगमगाता शरीर। बड़े लड़के के पास पाँच करोड़ रुपये। स्वीट्जरलैण्ड। यहाँ मुम्बई में पूनमचन्द के पास छह करोड़ रुपये। दूसरे दो लड़के मुम्बई, उस एक के पास पन्द्रह-पन्द्रह लाख होंगे। वे अभी बीमार पड़े हैं... पड़ गयी है और रोते हैं। आहाहा! यह संसार की दशा है। कोई शरणभूत नहीं है। शरणभूत अन्दर भगवान है। आहाहा! बहादुरभाई! यह बात है, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो बहुत वर्ष देखे। ९१ वर्ष हुए। १८ वर्ष की उम्र से तो सब दुनिया देखते आये हैं। व्यापार... बड़ा-बड़ा व्यापार किया है। मुम्बई, सूरत माल लेने जाते थे। सब बहुत देखा है। धूल में कुछ नहीं मिलता। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर देह में विराजता चैतन्य रत्न... आहाहा! उस चैतन्य रत्न की ज्ञायकपने की एकरूपी श्रद्धा। गुण-गुणी दो भेद नहीं। एकरूप चैतन्य की अन्दर अनुभव में प्रतीति और एकरूप से उसका ज्ञान। अविचलरूपी स्वरूप में चारित्र / रमणता, अविचलरूपी स्थिति। आहाहा! उस चारित्र द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** वहाँ तक तो कल आया था। कल यहाँ तक आया था। यह तो जरा कठिन था, इसलिए फिर से लिया है। आहाहा! यहाँ तो सैकड़ों बार वाँचन हो गया है। ६६ वर्ष दीक्षा लिये हो गये और दुकान में भी १८ वर्ष की उम्र से मैं तो शास्त्र पढ़ता था। दुकान घर की-पिताजी की, उसमें शास्त्र पढ़ता था। स्थानकवासी के। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगणांग, अध्यात्म कल्पद्रुम इत्यादि। आहाहा! परन्तु यह चीज़ कोई अलग। समयसार जहाँ (संवत्) १९७८ के वर्ष में मिला, तब मैंने बात बाहर प्रसिद्ध की कि शरीररहित होना हो तो यह चीज़ है। सिद्धपद प्राप्त करना हो तो यह चीज़ है। आहाहा! है? अभूतपूर्व। भभूतमल! यह अभूतपूर्व कहते हैं। आहाहा!

अभूत अर्थात् ***अभूतपूर्व=पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व।*** **जो परमजिनयोगीश्वर...** कहते हैं कि वह किसे होती है? कि **परमजिनयोगीश्वर...** वापस। आहाहा! परम वीतरागी

दशा जिन्हें प्रगट हुई है। आत्मा में से पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हुई है, ऐसे जिन, वे भी परम उत्कृष्ट। आहाहा! ऐसे परम जिन योगीश्वर। ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र को तो प्राप्त हैं। आहाहा! नग्न मुनि दिगम्बर, जंगल में बसनेवाले। प्रभु के बाद फिर पाँच सौ वर्ष में दिगम्बर में से यह श्वेताम्बर निकले हैं और फिर पाँच सौ वर्ष पहले इन श्वेताम्बर में से स्थानकवासी निकले हैं और स्थानकवासी में से वह तुलसी तेरापन्थी। तुलसी है न तेरापन्थी? खबर है। यहाँ आया था। अनादि सनातन यह सत्यधर्म जो वीतराग का, वह यह है। वे परमजिनयोगीश्वर। आहाहा! परम वीतरागी योगी अर्थात् योग-स्वरूप में जुड़ान। योगी अर्थात् वे बाबा नहीं। योग-जुड़ान। आहाहा! तस्सुत्तरी में आता है। ...तीन शल्यरहित। मिथ्यात्व, माया और निदान तीन शल्यरहित। अन्दर की रमणता। आहाहा! कभी सामायिक की है या नहीं? उसमें आता है न तस्सुत्तरी? उसमें प्रायश्चित्त करणेणं, विसोहि करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं कम्माणं। (वह तो) साधारण बात है। यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा!

अन्तर में जिनयोगीश्वर निश्चय को प्राप्त हुए हैं। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द। यह जो विषयों के आनन्द हैं, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के भोग का आनन्द है, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! समझ में आया? यह विषयानन्द, पैसानन्द, भोगानन्द यह सब आनन्द मानते हैं, वे तो जहर का प्याला है। आहाहा! जहर.. जहर.. है। उससे रहित भगवान **परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** पहले एकदम निश्चय पूर्ण नहीं होता। निश्चय तो है, परन्तु पूर्ण निश्चय नहीं होता। **पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** तब आत्मा का ज्ञान और दर्शन-चारित्रसहित अन्तर में पापक्रिया से निवृत्तिरूप पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं। आहाहा! **व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** वह व्यवहारनय है। वह पुण्य-बन्ध का कारण है। निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! व्यवहार आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का है।

उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। महाव्रतादि, निश्चय -सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित पाप की निवृत्तिरूप महाव्रत, **उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण...** अर्थात् तपस्या। वह व्यवहार तपस्या है, व्यवहारचारित्र है, पुण्यबन्ध का

कारण है। आहाहा! होता है, पहले आता है। **सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;...** वास्तविक तप तो यह है। यथार्थ मोक्ष का मार्ग (यह है)। यह अपवास करना... वह तो सब लंघन है। उपवास-उप अर्थात् आत्मा में समीपता। अतीन्द्रिय आनन्द में वास। समीपता अन्दर बसना, उसका नाम उपवास है। वह आत्मा के भान बिना के सब अप-वास है। अप अर्थात् बुरा वास है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात! अनन्त काल भटकते हुआ, प्रभु! वास्तविक तत्त्व को प्राप्त करने की दरकार भी नहीं की। सुनने मिलना कठिन। मिलने के बाद इस बात में प्रयत्न से प्राप्ति करना, वह की नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं आहाहा! उस सहज निश्चयनयस्वरूप। वे पंच महाव्रतादि के परिणाम तो राग है। होते हैं, परन्तु अन्दर निश्चय जो है-सहज निश्चयनयस्वरूप। स्वाभाविक निश्चयनय, आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसका नाम निश्चय सत्यचारित्र कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! बात में बहुत अन्तर है। वीतराग त्रिलोकनाथ की कथनी-वाणी की अलौकिकता है। वे कहते हैं कि निश्चयचारित्रसहित उसे व्यवहार होता है। सहज स्वाभाविक निश्चयनयस्वरूप परम स्वभावरूप। परमस्वभावस्वरूप परमस्वभावशान्त वीतरागस्वरूप **परमात्मा में प्रतपन,...** ऐसे जो परमात्मा, आत्मा अन्दर शुद्धचैतन्यघन है, उसमें रहना, वह तप है। है? **प्रतपन, वह तप है;...** आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले के शास्त्र हैं। दो हजार वर्ष पहले के मूल पाठ हैं, यह टीका ९०० वर्ष पहले की है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका बनायी। मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्यदेव का है।

सहज स्वाभाविक निश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप। परमस्वभावस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा। आहाहा! उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ वीतरागस्वभाव। वीतरागस्वरूप आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ परम वीतरागस्वरूप परमात्मा में। ऐसा जो त्रिकाली परमात्मा अन्दर, ध्रुव, उसमें **प्रतपन...** प्र—विशेष, तपन—एकाग्र, लीनता। वह तप है। उसका नाम भगवान तप कहते हैं। बाकी तो सब लंघन है। ये सब वर्षीतप को करते हैं न? ऐ.. आहाहा! अहमदाबाद में जेसंगभाई थे... जेसंग उजमसी, बड़ी मिल के मालिक, यहाँ भावनगर मिल में। उनका लड़का मंगलभाई था। उसकी बहू ने वर्षीतप किये थे। पश्चात् बाद में पारणे में पिचहत्तर हजार रुपये खर्च किये थे। गृहस्थ व्यक्ति, करोड़ रुपये। मंगलभाई यहाँ सुनने आते थे। भावनगर आवे, इसलिए यहाँ आवे परन्तु इस बात को कुछ

समझ नहीं सके। उनकी बहू, स्वयं मर गये पश्चात् उनकी बहू ने वर्षीतप किया। वह बड़ी रेल... क्या कहलाती है ? स्पेशल, अहमदाबाद से पालीताणा। पिचहत्तर हजार रुपये खर्च किये। वे मानो कि धर्म हो जायेगा। वर्षीतप करके पिहत्तर हजार खर्च किये।

अरे ! भाई ! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि **सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा...** परमस्वभावस्वरूप परमात्मा-आत्मा। परम त्रिकाली ज्ञान आनन्द आदि स्वरूप में प्रतपन। प्र-विशेष, तपन-स्थिर, **वह तप है;...** उस तप से मुक्ति होती है। उस तप से निर्जरा और संवर होते हैं। आहाहा ! है या नहीं ? **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप...** निज स्वरूप में अविचल-चलित न हो, ऐसी स्थितिरूप। **सहज निश्चयचारित्र...** स्वभाविक-सच्चा-सत्यचारित्र **इस तप से होता है।** उस तप से सच्चा चारित्र होता है। आहाहा ! अरे रे ! सुनने को भी मिलता नहीं। अन्दर है या नहीं ? घर की बहियाँ प्रतिदिन देखता है। नाम-फाम, उधार, यह देखने में फुर्सत नहीं मिलती। आहाहा ! और देखने जाये तो झट जँचता नहीं। सत् समागम बिना कठिन बात, भगवान ! मार्ग प्रभु ! तेरा कठिन है परन्तु उसका फल भी अलौकिक सिद्ध है न ? आहाहा !

परम निश्चय यहाँ चारित्र कहा **अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** ऊपर तप कहा है न ? **परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;...** परम स्वरूप भगवान आत्मा में अन्दर में तप। उस **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** आहाहा ! पहले तो अभी समझने में कठिन पड़े। क्या हो ? जिन्दगी चली जा रही है। मरण के समीप हो जाता है। एक दिन आयेगा और देह छूट जायेगी। इसका आत्मा तो अनादि-अनन्त है। इसने क्या किया ? यह तत्त्व निश्चय यदि यथार्थ दृष्टि -ज्ञान आदि नहीं किया तो जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा ! करोड़ों रुपये का दान किया हो, गोशाला में करोड़ों रुपये खर्च किये हों... आहाहा ! दया, दान में करोड़ों रुपये खर्च किये हों तो उसमें कोई धर्म नहीं है। आहाहा ! अभिमान छोड़कर राग की मन्दता करे, मैं करता हूँ, मैं देता हूँ - ऐसा अभिमान छोड़े तो शुभभाव होता है। पुण्य-बन्धन होता है। आहाहा !

मुमुक्षु : .....विचारता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्तापना माने तो मिथ्यात्व के साथ अनन्त संसार है। मैंने किया,

मैंने दिया, यह पैसा मेरी चीज़ है, पैसा तो धूल है। तू तो चैतन्य प्रभु है। चैतन्य की धूल? आहाहा! यह पैसा मेरा और मैंने खर्च किया। आहाहा! यह तो मिथ्यादृष्टि की कर्ताबुद्धि है। आहाहा! कठिन काम है, प्रभु! उसका फल भी ऐसा है न? अनन्त संसार का अन्त आ जाये और 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में...' आहाहा! मोक्ष, उसका यह कारण 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो।' ऐसी सिद्धदशा की प्राप्ति, ऐसी तपस्या से और ऐसे चारित्र से होती है। आहाहा!

इसी प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दि पंच - विंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—आधार दिया है।

दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः।।

ऊपर श्लोक है, नीचे श्लोकार्थ। **आत्मा का निश्चय, वह (सम्यग्)दर्शन है,...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह कोई समकित नहीं है। वह तो राग है। **आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का खजाना-भण्डार, प्रभु का दर्शन, उसकी प्रतीति, उसके सन्मुख होकर ज्ञान में-ख्याल में लेकर उसकी प्रतीति, उसका नाम दर्शन, उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! कितनी शर्तें? ऊपर शर्तें रखी हैं।

आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,... भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर भरा है। जैसे शक्कर में मिठास भरी है, वैसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उस अतीन्द्रिय आनन्द सन्मुख होकर श्रद्धा हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उसका नाम दर्शन। **आत्मा का बोध, वह ज्ञान है,...** शास्त्र के ज्ञान आदि नहीं। वे तो बाहर की बातें हैं। आत्मा का बोध। भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका ज्ञान, उसे बोध अर्थात् ज्ञान कहते हैं। आहाहा!

और **आत्मा में ही स्थिति, वह चारित्र है...** चारित्र कोई बाहर की चीज़ क्रियाकाण्ड नहीं है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु में स्थिति / स्थिरता, वह आनन्द में रमणता, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! एक-एक व्याख्या अलग है। **ऐसा योग (अर्थात् इन**

तीनों की एकता)... इन तीन की एकता। आहाहा! क्या कहा? आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, अनुभव। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द अनाकुल शान्ति का रसकन्द है, उसका अनुभव होकर प्रतीति होना, ज्ञान होकर प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन और उसका ज्ञान होना, वह ज्ञान है। आहाहा! आत्मा का बोध, वह ज्ञान है और **आत्मा में ही स्थिति...** आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! आत्मा में ही स्थिति। 'ही' शब्द है। आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सागर है। उस आत्मा में अन्दर स्थिति होना, वह चारित्र है। आहाहा! **एकत्वसप्ततति** पद्मनन्दि में से लिया है। बहुत संक्षिप्त!

यह शरीर तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर आठ कर्म हैं, वे भी मिट्टी धूल हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य है और हिंसा, झूठ, कमाना, दुकान के धन्धे में ध्यान रखना, वह पाप है। आहाहा! इन पुण्य और पाप तथा अजीव से भिन्न, ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, उस आत्मा के सन्मुख की प्रतीति और अनुभव होकर भान होना, और उसका ज्ञान, उसमें रमणता होना, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ये तीन, इस विधि से इसकी मुक्ति और सिद्धि है। आहाहा! कठिन लगे, बापू! क्या हो? मार्ग तो यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' परमात्मा जिनेश्वरदेव अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त होंगे, वर्तमान संख्यात तीर्थंकर, केवली वर्तते हैं। सबका एक कथन है, एक ही प्रकार यह है।

आत्मा अन्दर वस्तु भगवान चिदानन्द प्रभु अनन्त-अनन्त आनन्द के गुण का रचित प्रभु! गुण से भरपूर भगवान के सन्मुख के अनुभव की श्रद्धा, उसके अनुभव का ज्ञान और उसमें रमणता, यह चारित्र, ये तीनों मुक्ति का कारण है। मुक्ति का कारण ये तीन हैं। आहाहा! भाषा भी कठिन पड़े। क्या हो? प्रभु!

अनन्त काल हुआ परन्तु यह भूल गया। भूल गया, अनन्त काल। आहाहा! करोड़ों रुपये हों तो क्या करे? कहो, भभूतमलजी! अभी मलूपचन्दभाई का दृष्टान्त नहीं दिया? उसके दो लड़कों में एक के पास छह करोड़ और एक के पास पाँच करोड़ तथा दूसरे दो हैं, उनके पास दस-पन्द्रह लाख। चार लड़के हैं। हमारे चन्दुभाई बालब्रह्मचारी हैं, उनके दादा हैं। उनके बापू के बड़े भाई! अभी कहते हैं अहमदाबाद में अर्धपक्षघात (हुआ है।) चलते हुए गिर गये, दरार पड़ गयी है। आहाहा! कितनी बार फिर रुदन करते हैं, रोते हैं। क्या हो? प्रभु! जड़ की दशा में क्या हो? जड़ की अवस्था, प्रभु! जिस समय में जो

होनेवाली है, वह होगी; तुझसे रुकेगी नहीं। तुझसे सुधरेगी नहीं और तू माने कि मैं इसे सुधार दूँ। आहाहा!

सुख तो आत्मा में, आनन्द में अन्दर है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। **ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है।** इन तीन की एकता ही मोक्ष का कारण है। शिवपद अर्थात् मोक्ष। नमोत्थुणं में आता है। ..नमोत्थुणं में नहीं आता? सामायिक का पाठ। नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवन्ताणं.. उसमें अन्त में आता है। शिवमलय -मरुयमणंता.. शिव अर्थात्? वह शिवशंकर नहीं। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। अन्तर शिव-कल्याणस्वरूप, वह है। आया न? आहाहा! शिवपद का कारण, कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा सिद्धपद। निरुपद्रव स्वरूप, जिसमें उपद्रव नहीं, अकेला आनन्द का सागर नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर; जैसे समुद्र में बाढ़ आती है, वैसे पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! उसका नाम मुक्ति है, उसका नाम सिद्धपद है। आहाहा! बातें-बातें फेर (अन्तर) प्रभु! प्रभु का मार्ग ही अलग है। वीतराग जिनेश्वरदेव.. आहाहा! यह शिवपद यह कहते हैं। शिवपद का यह कारण है।

श्लोक-७५

और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,
सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च।।७५।।

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ शुद्धभावाधिकारः तृतीयः श्रुतस्कन्धः।

(हरिगीतिका)

यह सहज ज्ञान तथा सहज दृष्टि सदा जयवन्त है।
इस तरह सहज विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है॥
जो पापपुञ्ज विहीन कर्दम पंक्ति से नित रहित है।
संस्थित सहज निज तत्त्व में वह चेतना जयवन्त है॥७५॥

श्लोकार्थः—सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी (सहज) यह दृष्टि सदा जयवन्त है, वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है; पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है॥७५।

इस प्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य के समान है और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था—ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य -देवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) शुद्धभाव अधिकार नाम का तीसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-७५ पर प्रवचन

और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं)—अब टीकाकार श्लोक कहते हैं।

जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,
सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च।।७५।।

आहाहा! क्या कहते हैं? **सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** इसके दो अर्थ हैं। एक तो

भगवान अन्दर आत्मा, स्वाभाविक ज्ञान का पिण्ड प्रभु सदा जयवन्त है, परन्तु उसके अन्दर अनुभव की प्रतीति / सम्यक्त्व हुआ, वह भी जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सहजज्ञान...** त्रिकाली स्वभाव भगवान ज्ञान **सदा जयवन्त...** तीनों काल में जयवन्त। आहाहा! निगोद, प्याज और लहसुन में हो, तो भी प्रभु अन्दर आत्मा जो है, वह तो निर्मलानन्द है। उसकी पर्याय में, दशा में सब भूल है। पर्याय में, अवस्था में संसार है, उसकी चीज़ तो निर्मलानन्द त्रिकाल शुद्ध है। है ?

सहजज्ञान सदा जयवन्त है,... आहाहा! कैसे जँचे ? बाहर के अभिमान। हमने यह किया, हमने यह किया, हमने यह दुकान लगायी, फिर इतना कमाया, इतना कमाया। आहाहा! अफ्रीका में बहुत आमदनी है। छह हजार लोग अपने महाजन हैं। जामनगर के आसपास के गाँवों के छह हजार महाजन। सब बहुत पैसेवाले। हबशी लोगों का बहुत डर। आये थे सब, आये थे। हबशी लोगों का डर। कब मारेंगे ? आहाहा! एक बात की थी न ? कि तीन व्यक्तियों को घर में जाकर मार डाला। फिर तो उसका बाप आया, उसे मार डाला। चार को मार डाला। आहाहा! ये वीरचन्दभाई के भाई बैठे। इनके लड़के को भी मारा। मारकर असाध्य कर डाला। फिर चले गये। मानो मर गया इसलिए... आहाहा! हबशी लोग बहुत पापी मुसलमान। आहाहा! इसलिए पैसेवालों को बहुत डर। इस पैसे का सुख... आहाहा! हम उतरे थे, वह पन्द्रह लाख का मकान है। तीन पटी चारों ओर एक वण्डी, उसमें तार का एक पूरा भाग, तीसरा फिर तार के अन्दर का... इसलिए तीन पटी उकले तो अन्दर में गिर सके इतना डर। आहाहा! और करोड़पति। आहाहा! चालीस-चालीस लाख रुपये के कपड़े के धन्धे। पूरी दुकान कपड़े से भरी हो। घोड़ा लकड़ी का। आहाहा! दुनिया का यह सुख!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! **सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** वह सुख है। आहाहा! अन्तर में ज्ञानस्वभाव स्वाभाविक ज्ञान, यह शास्त्र पढ़कर और बाहर के एल.एल.बी. तथा एम.ए. एल.एल.बी. के पुंछड़े डिग्रियाँ वकील को होती है और एम.ए. (एम.बी.बी.एस.) की डिग्रियाँ डॉक्टर को होती हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि स्वाभाविक ज्ञान सदा जयवन्त। आत्मा का ज्ञान। भगवान आत्मा प्रज्ञास्वरूप, ज्ञानस्वरूप, जाननस्वरूप का पिण्ड, वह स्वाभाविक ज्ञान का पिण्ड जयवन्त वर्तता है। वह है तो जयवन्त, परन्तु यहाँ दृष्टि हुई है,

वह भी कहता है कि यह जयवन्त वर्तता है। जाने बिना जयवन्त वर्ते, यह किसे कहना? आहाहा! जो चीज़ जानने में आयी नहीं, वह चीज़ है, ऐसा कैसे माने? आहाहा! वह चीज़ जो है, भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसका ज्ञान होता है कि यह चीज़ ज्ञान है, तो ज्ञान होता है उसे सच्चा ज्ञान कहते हैं। आहाहा! ऐसा सब महँगा। यहाँ तो यह चलता है, भाई! यहाँ पैंतालीस वर्ष, साढ़े पैंतालीस वर्ष हुए। यह तो जंगल था। यहाँ तो सर्वत्र भैंसा बैठते थे। आहाहा! तीन लोक के नाथ की ऐसी बात! साक्षात् भगवान सीमन्धर प्रभु विराजते हैं; कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, वहाँ से आकर अपने लिये यह (शास्त्र) बनाया था। आहाहा! यह शास्त्र स्वयं के लिये बनाया। दूसरे समयसार आदि तो उपदेशकरूप से है। यह तो अपने हित के लिये बनाया है। आहाहा!

कहते हैं कि **सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी (सहज) यह दृष्टि...** आहाहा! **सदा जयवन्त है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन भी सदा जयवन्त है। अन्तर में जो दर्शन सम्यक् है, वह तो त्रिकाली जयवन्त है, परन्तु पर्याय में भान हुआ, वह भी जयवन्त वर्तता है। उस पर्याय ने उसे माना, तब कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? **यह दृष्टि सदा जयवन्त है,...**

वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र... आहाहा! विशुद्ध चारित्र। स्वरूप ज्ञानानन्द में रमणता, वह चारित्र। चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना। जैसे हरी घास को गोचरी गाय खाती है, वैसे अन्दर में आनन्द का सागर नाथ, उसे अन्तर अनुभव है, उस अन्दर से आनन्द की गोचरी करे। आहाहा! इसका नाम चारित्र है, ऐसी बात है प्रभु! बहुत फेरफार। दूसरे लोगों को जँचना कठिन पड़े।

विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है;... त्रिकाली तो जयवन्त है, परन्तु हमारी वर्तमान दशा भी जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनिराज की व्याख्या है। हमारे दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय में जयवन्त वर्तते हैं और उनका विषय तो जयवन्त वर्तता ही है। वह तो त्रिकाली है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। सब लोग नहीं कहते? 'आनन्द कहे परमाणन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले एक त्रांबिया न तेर।' इसी प्रकार प्रभु कहते हैं कि मेरे और तेरे, बापू! अनादि से भटकता है, उसकी बात और मुझमें अन्तर है। बहुत सब बात में अन्तर है। आहाहा! दुनिया में ऐसा कहते हैं न, 'माणसे माणसे फेर, एक

लाखे न मले अने एक त्रांबिया न तेर।' ऐसी बात प्रभु की सुनना मिलना, मुश्किल पड़ती है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं **विशुद्ध चारित्र भी सदा.. चारित्र भी..** है न? अर्थात् ज्ञान भी है, दृष्टि भी है और तदुपरान्त चारित्र भी है। आहाहा! मुनिराज हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले टीका रचनेवाले। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा की टीका रचनेवाले। **चारित्र भी सदा जयवन्त है; पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित...** आहाहा! पापसमूहरूपी मल। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। 'पाप को तो पाप सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! योगीन्द्रदेव में आता है। 'पाप को पाप तो सब कहे, पुण्य को भी अनुभवीजन पाप कहे।' राग, दया, दान, व्रत वह पाप। आत्मा की शान्ति से विरुद्ध भाव, (वह पाप है)। आहाहा! **पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित...** आहाहा! यह पुण्य और पाप राग की पंक्ति अनादि से ऐसे चलती है। अज्ञानी में यही अनादि से चलता है। पंक्ति। पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. शुभ-अशुभ.. शुभ-अशुभ.. इस **पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है, ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित...** आहाहा! ऐसा सहज परमतत्त्व, स्वाभाविक आनन्द का नाथ प्रभु में संस्थित अर्थात् रहनेवाली **चेतना भी...** अनुभव। तदुपरान्त **चेतना भी सदा जयवन्त है।** जानन-देखन की चेतना भी सदा जयवन्त है और पर्याय में जानन-देखन आया, उससे ख्याल आया कि यह चेतन जयवन्त है तो पर्याय भी जयवन्त है। आहाहा! **सदा जयवन्त है।** लो, मांगलिक हो गया। कल समयसार लिया जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)